6434

तित्थयर

सत्रहवाँ वर्ष । सितम्बर १९६३ । पंचम अंक

जैन भवन

तित्थयर

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष १७ : अंक ५

सितम्बर १९९३

□

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७

सूची

जैन महापुराण की कलापरक सामग्री १३१

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र १४३

संकलन १५८

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या १५६

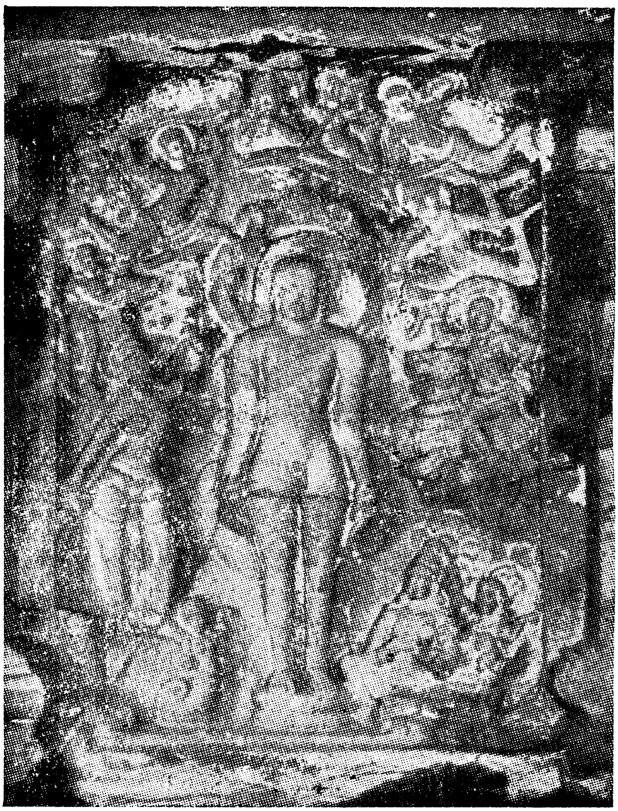

भगवान पार्श्वनाथ, एलोरा

जैन महापुराण की कलापरक सामग्री

डॉ० मारुतिनन्दन तिवारी

पुराणों की रचना ब्राह्मण एवं जैन दोनों ही धर्मों में प्रचुर संख्या में की गई। ये पुराण वस्तुतः भारतीय संस्कृति के विश्वकोश हैं जिनमें विभिन्न कथाओं के माध्यम से धार्मिक जीवन के विविध पक्षों के साथ ही सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और कलापरक विषयों की विस्तारपूर्वक चर्चा मिलती है। श्वेताम्बर परम्परा में ऐसे ग्रन्थों को चरित या चरित्र तथा दिगम्बर परम्परा में पुराण कहा गया है। लगभग पाँचवीं शती ई० से १०वीं शती ई० के मध्य जिन प्रारम्भिक जैन पुराणों की रचना की गई उनमें *विमलसूरिकृत पउमचरिय, रविषेणकृत पद्मपुराण, जिनसेनकृत हरिवंशपुराण,* जिनसेन एवं गुणभद्रकृत संस्कृत महापुराण तथा पुष्पदन्तकृत अपभ्रंश महापुराण सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं।

जैन पुराणों में महापुराण सर्वाधिक लोकप्रिय था जो आदिपुराण और उत्तरपुराण इन दो खण्डों में विभक्त है।[१] आदिपुराण की रचना जिनसेन ने लगभग ९वीं शती ई० के मध्य और उत्तरपुराण की रचना उनके शिष्य गुणभद्र ने ९वीं शती ई० के अंत या १०वीं शती ई० के प्रारम्भ में की थी। महापुराण में जैन देवकुल के २४ तीर्थंकरों तथा १२ चक्रवर्ती, ९ बलभद्र, ९ नारायण और ९ प्रतिनारायण सहित कुल तिरसठ शलाकापुरुषों (श्रेष्ठजनों) के जीवन चरित का विस्तारपूर्वक निरूपण हुआ है। कलापरक अध्ययन की दृष्टि से आदिपुराण एवं उत्तरपुराण यानी महापुराण (दिगम्बर परम्परा) की सामग्री का विशेष महत्व है क्योंकि उनका रचनाकाल (९वीं-१०वीं शती ई०) तीर्थंकरों सहित अन्य शलाकापुरुषों तथा जैन देवों के स्वरूप या लक्षण निर्धारण का काल था और इन ग्रन्थों की रचना के बाद ही श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा में विभिन्न शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थों की रचना हुई जिनमें जैन आराध्यदेवों के प्रतिमालक्षण का विस्तारपूर्वक निरूपण किया गया।

धार्मिक समन्वय की भावात्मक अभिव्यक्ति की दृष्टि से ऋषभनाथ तीर्थंकर के १००८ नामों से स्तवन के सन्दर्भ में शिव, ब्रह्मा, विष्णु एवं

---

१ आदिपुराण (जिनसेनकृत), सं० पन्नालाल जैन, ज्ञानपीठ मूर्ति देवी जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी, १९६३; उत्तरपुराण (गुणभद्रकृत), सं० पन्नालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, १९५४।

बुद्धादि देवों के अनेक नामों का उल्लेख अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इन नामों में स्वयंभू, शंभू, शंकर, सद्योजात, जगन्नाथ, लक्ष्मीपति, त्रिनेत्र, जितमन्मथ, त्रिपुरारि, त्रिलोचन, धाता, ब्रह्मा, शिव, ईशान, हिरण्यगर्भ, विश्वमूर्ति, भूतनाथ, विधाता, मृत्युंजय, पितामह, महेश्वर, महादेव, कामारि एवं चतुरानन मुख्य हैं।[1] अन्य नामों में इन्द्र (महेन्द्र, सहस्राक्ष), सूर्य (आदित्य), कुबेर, वामन देव, राम, कृष्ण, इन्द्राणी एवं विन्ध्यवासिनी देवी उल्लेखनीय हैं। साथ ही बौद्ध देवकुल से सम्बन्धित बुद्ध, सिद्धार्थ, स्वयंबुद्ध तथा अक्षोभ्य जैसे नाम भी महत्वपूर्ण हैं।[2] भगीरथ और गंगा तथा शिव के स्थान पर इन्द्र के ताण्डव नृत्य के सन्दर्भ भी ब्राह्मण परम्परा के अनुकरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

महापुराण की रचना राष्ट्रकूट शासक अमोघवर्ष-प्रथम एवं कृष्ण-द्वितीय के शासनकाल और क्षेत्र में हुई, अतः उसकी कलापरक सामग्री का राष्ट्रकूट कला केन्द्र एलोरा (औरंगाबाद, महाराष्ट्र) की जैन गुफाओं (सं० ३०-४०) की मूर्तियों की शास्त्रीय और साहित्यिक पृष्ठभूमि की दृष्टि से विशेष महत्व है। ज्ञातव्य है कि महापुराण एवं एलोरा की जैन गुफायें समकालीन (९वीं-१०वीं शती ई०) और दिगम्बर परम्परा से सम्बद्ध हैं जिससे महापुराण की कलापरक सामग्री के एलोराकी जैन गुफाओं की मूर्तियों से तुलना का महत्व और भी बढ़ जाता है।[3] एलोरा की बाहुबली मूर्तियों में उनके शरीर से लिपटी माधवी एवं सर्प, वृश्चिक, छिपकली तथा मृग जैसे जीव-जन्तुओं का शरीर पर या समीप ही विचरण करते हुए और पार्श्वनाथ की मूर्तियों में शंवर (या कमठ) के विस्तृत उपसर्गों के अंकन स्पष्टतः महापुराण के उल्लेखों से निर्दिष्ट रहे हैं।

महापुराण में ६३ शलाकापुरुषों के अन्तर्गत २४ तीर्थंकरों की सूची में—ऋषभनाथ (या आदिनाथ), अजितनाथ, संभवनाथ; अभिनन्दन, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, सुविधिनाथ (पुष्पदन्त), शीतलनाथ, श्रेयांशनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, नमिनाथ, नेमिनाथ (या अरिष्टनेमि),

---

[2] आदिपुराण, २५.१००-२१७।

[3] मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी, 'इमेजेज आव बाहुबली इन एलोरा', एलोरा केव्स—स्कल्पचर्स एण्ड आर्किटेक्चर (सं० रतन परिभू), नई दिल्ली, १९८८।

पार्श्वनाथ एवं महावीर (या वर्धमान); १२ चक्रवर्तियों में—भरत, सगर (या सागर), मघवा, सनत्कुमार, शांति, कुन्थु, अर, सुभौम (या सुभूम), पद्म, हरिषेण, जयसेन तथा ब्रह्मदत्त ; ९ बलभद्रों में— विजय (या अचल), अचल (या विजय) धर्म (या भद्र), सुप्रभ, सुदर्शन, नन्दिषेण (या आनन्द), नन्दिमित्र (या नन्दन), राम (या पद्म) एवं पद्म (या बलराम); ९ नारायणों में—त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ट, स्वयम्भू, पुरुषोत्तम, पुरुष सिंह, पुण्डरीक (या पुरुषपुण्डरीक), दत्त, लक्ष्मण व कृष्ण ; तथा ९ प्रतिनारायणों में—अश्वग्रीव, तारक, मधु (या मेरक), मधुसूदन (या निशुम्भ), मधुक्रीड (या मधुकैटभ), निशुम्भ (या बलि), बलीन्द्र (या प्रह्लाद), रावण एवं जरासन्ध के नामोल्लेख मिलते हैं ।

जैन देवकुल के अध्ययन की दृष्टि से महापुराण की सामग्री की कुछ निजी विशेषताएँ रही हैं जो किन्हीं अर्थों में ९वीं-१०वीं शती ई० में जैन देवकुल के विकास के अनुरुप हैं । दिगम्बर परम्परा में २४ तीर्थंकरों के यक्ष-यक्षी *युगलों का स्वतंत्र निरूपण १२वीं शती ई० हुआ जो प्रतिष्ठा सारसंग्रह* में वर्णित है । संभवतः इसी कारण जैन महापुराण में २४ यक्ष-यक्षी युगलों का अनुल्लेख है । ६३ शलाकापुरुषों में २४ तीर्थंकरों— राम, बलराम, कृष्ण, भरत, बाहुबली आदि के सन्दर्भ एलोरा, देवगढ़ (ललितपुर, उ० प्र०), खजुराहो (छतरपुर, म० प्र०, १०वीं १२वीं शती ई०) तथा अन्य दिगम्बर स्थलों पर उनकी मूर्त अभिव्यक्ति के अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं । इनके अतिरिक्त महापुराण में विभिन्न प्रसंगों में इन्द्र, शिव, विष्णु, ब्रह्मा, वामनदेव, लक्ष्मी, सरस्वती, सूर्य, गंगा व सिन्धु देवी, कुबेर, दिककुमारी, भवनवासी, कल्पवासी, ज्योतिष्क तथा व्यन्तर देवों और लौकान्तिक देवों एवं लोकपूजन से सम्बन्धित श्री, ह्री, धृति, बुद्धि और कीर्ति आदि देवियों के उल्लेख भी महत्वपूर्ण हैं जो जैन देवकुल की व्यापक और समन्वयात्मक अवधारणा को व्यक्त करते हैं ।

महापुराण में २४ तीर्थंकरों में ऋषभनाथ को सर्वाधिक महत्व दिया गया जिनके बाद पार्श्वनाथ और तत्पश्चात् नेमिनाथ और महावीर का विस्तार पूर्वक उल्लेख हुआ है । अन्य तीर्थंकरों की चर्चा संक्षेप में की गयी है । तीर्थंकरों के सन्दर्भ में मुख्यतः पंचकल्याणकों (च्यवन, जन्म; दीक्षा, कैवल्य और निर्वाण) एवं ऋषभनाथ, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ और महावीर के सन्दर्भ में उनके जीवन की कुछ विशिष्ट घटनाओं का भी विस्तारपूर्वक उल्लेख हुआ । ऋषभनाथ के प्रसंग में भरत और बाहुबली के युद्ध, बाहुबली की कठिन

साधना और कैवल्य प्राप्ति तथा कालान्तर में भरत चक्रवर्ती के भी संसार त्यागने, नेमिनाथ के सन्दर्भ में कृष्ण की आयुधशाला में नेमि के शौर्य-प्रदर्शन तथा पिंजड़े में बन्द विभिन्न पशुओं की भोज के निमित्त की जाने वाली हत्या की सूचना के फलस्वरूप अविवाहित रूप में संसार त्यागने एवं पार्श्वनाथ के समय पूर्वजन्म के बैरी कमठ (शंबर) द्वारा उपस्थित उपसर्गों और महावीर की तपश्चर्या के समय संगमदेव, शूलपाणि यक्ष आदि के उपसर्गों से सम्बन्धित उल्लेख कलापरक अध्ययन की दृष्टि से विशेषतः महत्वपूर्ण हैं।

उत्तर भारत में ऋषभनाथ की सर्वाधिक स्वतंत्र मूर्तियाँ बनीं। ऋषभनाथ के बाद क्रमशः पार्श्वनाथ, महावीर और नेमिनाथ की मूर्तियाँ बनीं। किन्तु दक्षिण भारत में पार्श्वनाथ की सर्वाधिक मूर्तियाँ उत्कीर्ण हुईं। दक्षिण भारत में पार्श्वनाथ की तुलना में ऋषभनाथ की मूर्तियाँ नगण्य हैं। ऋषभनाथ से सम्बन्धित स्वतन्त्र आदिपुराण की रचना की पृष्ठभूमि में एलोरा में ऋषभनाथ की केवल पाँच मूर्तियों का मिलना सर्वथा आश्चर्यजनक है। दूसरी ओर पार्श्वनाथ की एलोरा में ३० से अधिक स्वतन्त्र मूर्तियाँ देखी जा सकती हैं।

एलोरा में पार्श्वनाथ के बाद महावीर की ही सर्वाधिक मूर्तियाँ हैं जिनके कुल १२ उदाहरण मिले हैं। पार्श्वनाथ, महावीर और ऋषभनाथ के अतिरिक्त अजितनाथ, सुपार्श्वनाथ और नेमिनाथ की भी एक से तीन मूर्तियाँ देखी जा सकती हैं। कुंभारिया और दिलवाड़ा के श्वेताम्बर जैन मन्दिरों (११वीं-१३वीं शती ई०) में भरत और बाहुबली के युद्ध एवं बाहुबली की कठिन तपश्चर्या, नेमिनाथ के कृष्ण की आयुधशाला में शौर्य प्रदर्शन एवं विवाह के पूर्व दीक्षा ग्रहण करने तथा पार्श्वनाथ एवं महावीर के विभिन्न उपसर्गों से सम्बन्धित अंकन विस्तार से उत्कीर्ण हैं। दूसरी ओर दिगम्बर स्थल पर तीर्थंकरों के जीवन दृश्यों का विस्तृत अंकन नहीं हुआ है। एलोरा की तीर्थंकर मूर्तियों में केवल पार्श्वनाथ के साथ शम्बर द्वारा उपस्थित किये गये विभिन्न उपसर्गों का विस्तृत अंकन मिलता है। महावीर के साथ पारम्परिक यक्ष-यक्षी मातंग व सिद्धायिका के स्थान पर नेमिनाथ के यक्ष-यक्षी कुबेर (या सर्वानुभूति) और अम्बिका निरूपित हैं जो स्पष्टतः पश्चिम-भारत के श्वेताम्बर मूर्ति परम्परा का प्रभाव है जहाँ लगभग सभी तीर्थंकरों के साथ यक्ष-यक्षी के रूप में कुबेर और अम्बिका ही आमूर्तित हैं।[४]

---

४ मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी, जैन प्रतिमाविज्ञान, वाराणसी, १९८१, पृ० १५९।

उत्तरपुराण में नेमिनाथ के साथ सर्पफणों के छत्र वाले हलधर बलराम और चक्र, शंख और गदाधारी वासुदेव कृष्ण का उल्लेख हुआ है।[५] तदनुरूप मथुरा व देवगढ़ (मन्दिर २) की दिगम्बर परम्परा की कुछ नेमिनाथ मूर्तियों में दोनों पार्श्वों में बलराम व कृष्ण की आकृतियाँ उकेरी हैं।[६] एलोरा एवं ६वीं-१०वीं शती ई० की दिगम्बर परम्परा की अन्यत्र की तीर्थंकर मूर्तियों में महापुराण के उल्लेख के अनुरूप सिंहासन प्रभामण्डल, त्रिछत्र, चैत्य वृक्ष (या अशोक वृक्ष), देवदुन्दुभि, सुरपुष्पवृष्टि, दिव्य ध्वनि, चामरधारी सेवक जैसे अष्ट-प्रातिहार्यों को दिखाया गया है। आदिपुराण में तीर्थंकरों मूर्तियों में दिखाये जाने वाले अष्ट-प्रातिहार्यों का सर्वाधिक विस्तार में उल्लेख हुआ है। इस सन्दर्भ में एलोरा की पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मूर्तियों में किसी भी प्रातिहार्य का न दिखाया जाना न केवल शिल्पी की सूझ वरन उत्तरपुराण के विवरणों के सर्वथा अनुरूप है। पार्श्वनाथ की ध्यानस्थ मूर्तियों में प्रातिहार्यों का अंकन किया गया है क्योंकि ध्यानस्थ मूर्तियाँ उनके तीर्थंकर पद प्राप्त करने के उपरान्त की स्थिति को अभिव्यक्त करती हैं। दूसरी ओर एलोरा की कायोत्सर्ग मूर्तियों में पार्श्वनाथ की तपस्या में तरह-तरह के उपसर्गों का प्रसंग दिखाया गया है (चित्र १-५)। शम्बर के ये उपसर्ग स्पष्टतः कैवल्य प्राप्ति के पूर्व के पार्श्वनाथ का अंकन है। इसी कारण उपसर्ग से सम्बन्धित पार्श्वनाथ कीं मूर्तियों में अष्ट-प्रातिहार्यों को नहीं दिखाया गया है। इस सन्दर्भ में एक और उल्लेखनीय बात एलोरा की जैन गुफाओं में पार्श्वनाथ की शम्बर के उपसर्गों को शिल्पांकित करने वाली कायोत्सर्ग मूर्तियों के एक नियत स्थान पर उत्कीर्णन से सम्बन्धित है। पार्श्वनाथ की सभी उपसर्ग मूर्तियाँ कठिन तपश्चर्या में लीन बाहुबली की मूर्ति के सामने उत्कीर्ण हैं। स्मरणीय है कि पार्श्व जहाँ शम्बर के विभिन्न उपसर्गों को शांतभाव से विचलित हुए बिना सहते रहे वहीं बाहुबली भी अपनी साधना में इस सीमा तक तल्लीन हुए कि शरीर से लिपटी माधवी और सर्प, वृश्चिक् जैसे जन्तु से सर्वथा अप्रभावित और ध्यानमग्न रहे। यहाँ यह भी उल्लेख्य है कि राष्ट्रकूट शिल्पी ने पार्श्वनाथ की उपसर्ग और बाहुबली की साधनारत मूर्तियों के आमने-सामने उत्कीर्णन की परम्परा को मूलतः पूर्ववर्ती चालुक्य कला से

---

[५] उत्तरपुराण, ७१.१२३-१२५।

[६] मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी, जैन प्रतिमाविज्ञान, पृ० ११९-२१।

प्राप्त किया था जिसके उदाहरण बादामी की गुफा सं० ४ और अयहोल की जैन गुफा (सं० ७वीं शती ई०) में देखे जा सकते हैं।[७]

जैन स्थलों पर अन्य शलाकापुरुषों में से केवल भरत चक्रवर्ती, राम, बलराम एवं कृष्ण ही रुपायत् हुए हैं। आदिपुराण में भरत चक्रवर्ती के चौदह रत्नों—चक्र, दण्ड, खड्ग, छत्र, चर्म, मणि, काकिणी (कौड़ी), अश्व, गज, सेनापति, गृहपति, शिल्पी और स्त्री तथा ६ निधियों—नैसर्प, पाण्डुक, पिंगल, सर्वरत्न, महापद्म, काल, महाकाल, माणव तथा शंख का उल्लेख भरत के शिल्पांकन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।[८] यद्यपि एलोरा में भरत वा किसी अन्य चक्रवर्ती और बलराम, कृष्ण एवं राम की मूर्ति के कोई उदाहरण नहीं मिलते किन्तु देवगढ़, खजुराहो और दिलवाड़ा स्थित विमलवसही व लूणवसहीसे इनकी मूर्तियाँ मिली हैं। देवगढ़ के मन्दिर सं० २ और १२ (चहारदिवारी) की १०वीं-११वीं शती ई० की मूर्तियों में भरत चक्रवर्ती की कायोत्सर्ग में खड़ी आकृति के समीप आदिपुराण में वर्णित १४ रत्नों में से कुछ मुख्य रत्नों एवं ६ घण्टों के रूप में ६ निधियों को उत्कीर्ण किया गया है।[९] आदिपुराण में भरत के संसार त्यागने, दीक्षा ग्रहण करने और कठिन साधना द्वारा कैवल्य प्राप्त करने का उल्लेख हुआ है जिसके आधार पर ही देवगढ़ में भरत की कायोत्सर्ग में निर्वस्त्र खड़ी मूर्ति उत्कीर्ण हुई। उत्तरपुराण में राम, बलराम और कृष्ण के उल्लेख का महत्व खजुराहों एवं देवगढ़ जैसे स्थलों पर हनुमान सहित राम-सीता (पार्श्वनाथ मंदिर, खजुराहो), बलराम-रेवती व यमलार्जुन (पार्श्वनाथ मन्दिर, सं० ९५० ई०, खजुराहो) एवं नेमिनाथ की मूर्तियों में बलराम और कृष्ण के अंकन (देवगढ़, मथुरा) में देखा जा सकता है।

यह सर्वथा आश्चर्यजनक है कि महापुराण में यक्ष-यक्षी का कोई उल्लेख नहीं हुआ है। केवल महापुराण ही नहीं वरन् दिगम्बर परम्परा के अन्य पुराणों में भी यक्ष-यक्षी का अनुल्लेख ध्यातव्य है। दूसरी ओर श्वेताम्बर परम्परा के ६३ शलाकापुरुषों से सम्बन्धित चरितग्रन्थों में यक्ष-यक्षी युगलों के प्रतिमा-

---

७ मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी, 'पार्श्वनाथ इमेजेज़ इन एलोरा', सेमिनार प्रोसिडिंग, दिल्ली, १९९० ।

८ आदिपुराण, ३७.७३-७४, ८३-८४ ।

९ मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी, 'अनपब्लिश्ड इमेजेज़ आव भरत चक्रवर्ती ऐट देवगढ़', जर्नल इण्डियन सोसायटी आव ओरियण्टल आर्ट, सं० १२-१३, १९८१-८३, पृ० २५-२९ ।

निरूपण से सम्बन्धित विवरण मिलते हैं जिसमें हेमचन्द्रकृत — त्रिषष्टिशलाका-पुरुषचरित्र (१२वीं शती ई०) सर्वप्रमुख है। ल० ८वीं शती ई० के पूर्ववर्ती दिगम्बर ग्रन्थ तिलोयपण्णति (यतिवृषभकृत) में २४ तीर्थंकरों के यक्ष-यक्षी युगलों की सूची का मिलना इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। तिलोयपण्णति की सूची तथा मथुरा, राजगीर, एलोरा, खजुराहो एवं देवगढ़ जैसे ९वीं-१०वीं शती ई० के दिगम्बर पुरास्थलों पर यक्षियों की स्वतंत्र एवं जिन-संयुक्त मूर्तियों के उत्कीर्णन की परम्परा के बाद भी महापुराण में यक्ष-यक्षी का कोई उल्लेख न किया जाना सम्भवतः महापुराण के कर्त्ता जिनसेन एवं गुणभद्र जैसे आचार्यों के व्यक्तिगत दृष्टि को अभिव्यक्त करता है। यह सर्वथा निर्विवाद है कि वीतरागी जिनों की उपासना से किसी भौतिक सुख-समृद्धि की प्राप्ति सम्भव नहीं थी जबकि सामान्य उपासक वर्ग ऐसी भौतिक उपलब्धियों का आकांक्षी होता है। सामान्य उपासक वर्गों की अपेक्षा को पूर्ण करने के उद्देश्य से ही प्रत्येक जिन के साथ एक यक्ष और एक यक्षी को शासन देवता के रूप में सम्बद्ध किया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि जैन महापुराण के कर्त्ता इस प्रकार के मध्यममार्गी तुष्टीकरण की नीति के समर्थक नहीं थे।

एलोरा की जैन गुफाओं में जैन देवकुल की तीन प्रमुख यक्षियों चक्रेश्वरी, अंबिका एवं पद्मावती तथा कुबेर यक्ष की स्वतन्त्र एवं जिन-संयुक्त मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। चक्रेश्वरी की चार, आठ और बारह हाथों वाली कुल चार मूर्तियाँ गुफा सं० ३० और ३२ में उकेरी हैं। इनमें परम्परानुरूप गरूड़वाहना चक्रेश्वरी के दो या अधिक हाथों में चक्र तथा शेष में शंख, पद्म, गदा और बज्र जैसे आयुध हैं। सर्वाधिक मूर्तियाँ अंबिका की बनीं जिनमें अंबिका सर्वदा द्विभुजा एवं दिगम्बर के अनुरूप सिंहवाहना तथा एक हाथ में आम्र-लुम्बि व दूसरे में पुत्र के साथ निरूपित हैं। पार्श्वनाथ की पद्मावती यक्षी की केवल एक स्वतन्त्र मूर्ति मिली है जो गुफा सं० ३२ में है। कुक्कुट-सर्प वाहन वाली अष्टभुजा यक्षी के अवशिष्ट करों में पद्म, मूसल, खड्ग, खेटक व धनुष स्पष्ट हैं। अंबिका के समान ही एलोरा में कुबेर या सर्वानुभूति की भी सर्वाधिक मूर्तियाँ हैं जिनमें श्वेताम्बर स्थलों की भाँति गजारूढ़ यक्ष को द्विभुज एवं पात्र (या फल) एवं धन के थैले से युक्त दिखाया गया है।

पउमचरिय एवं हरिवंशपुराण जैसे पूर्ववर्ती ग्रन्थों के समान ही उत्तर-पुराण में भी विद्यादेवियों के अनेक उल्लेख मिलते हैं। उत्तरपुराण में कई अलग-अलग प्रसंगों में लगभग ५७ विद्यादेवियों का नामोल्लेख हुआ है जिनमें

अधिकांश राम, लक्ष्मण, रावण, सुग्रीव व हनुमान द्वारा सिद्ध या प्राप्त हैं। ल० १०वीं सती ई० (संहितासार एवं शोभनस्तुति) में अनेक विद्याओं में से १६ प्रमुख महाविद्याओं को लेकर एक सूची नियत हुयी जिसमें उत्तरपुराण में उल्लिखित रोहिणी, प्रज्ञप्ति, गरुड़वाहिनी (अप्रतिचक्रा), सिंहवाहिनी (महा-मानसी), महाज्वाला, गौरी, मनोवेगा जैसी महाविद्याओं को सम्मिलित किया गया। दिगम्बर स्थलों पर खजुराहो के आदिनाथ जैन मंदिर (११वीं शती ई०) के एकमात्र अपवाद के अतिरिक्त महाविद्याओं की मूर्तियाँ नहीं बनीं जबकि गुजरात व राजस्थान के श्वेताम्बर स्थलों पर इन महाविद्याओं का अंकन सर्वाधिक लोकप्रिय विषय था जिसके सामूहिक अंकन के कम से कम चार उदाहरण क्रमशः कुंभारिया (बनासकांठा, गुजरात) के शांतिनाथ मंदिर (११वीं शती ई०) एवं दिलवाड़ा (सिरोही, राजस्थान) स्थित विमलवसही (दो उदाहरण—रंगमण्डप एवं देवकुलिका वितान-ल० ११५० ई०) और लूणवसही (१२३० ई०—रंगमण्डप) से मिले हैं। एलोरा में महाविद्या की कोई मूर्ति नहीं मिली है।[१०]

पूर्व परम्परा में वर्णित देवताओं के चार वर्गों—भवनवासी, व्यन्तर या वाणमन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक का महापुराण में भी उल्लेख हुआ है। देवताओं के चतुर्वर्ग की सूची से स्पष्ट है कि लोकपूजन से संबंधित यक्ष, नाग तथा गन्धर्व-किन्नर जैसे अर्द्धदेवों को भी जैन देवकुल में सम्मानजनक स्थान दिया गया। साथ ही खजुराहो, देवगढ़, कुंभारिया, दिलवाड़ा और एलोरा जैसे स्थलों पर यक्षों, नागों, गंधर्वों, किन्नरों आदि का बहुतायत से अंकन हुआ है। महापुराण में श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि तथा लक्ष्मी जैसी ब्राह्मण एवं लोकपरम्परा की देवियों को प्रमुख व्यन्तर देवियों के अन्तर्गत रखा गया है और इन्हें जिन माताओं की विभिन्न प्रकार से सेवा करने वाली बताया गया हैं।

पूर्वग्रन्थों की भाँति महापुराण में भी इन्द्र का जिनों के प्रधान सेवक के रूप में उल्लेख हुआ है जो जिनों के पंचकल्याणकों एवं समवसरण की रचना के समय स्वयं उपस्थित होते हैं। ज्ञातव्य है कि जिनों के समवसरण में इन्द्र ही शासनदेवता के रूप में उनके यक्ष और यक्षी की नियुक्ति करते हैं। इन्द्र

---

१० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी, 'दि आइकनोग्राफी आव दि सिक्सटीन जैन महाविद्याज ऐज डेपिक्टेड इन दि शांतिनाथ टेम्पुल, कुंभारिया', संबोधि, खं० ३ अं० १, पृ० १५-२२।

को देवाधिपति, सहस्राक्ष, गजारूढ़ एवं वज्रधारी निरूपित किया गया है।[११] आदिपुराण में नामोल्लेख किये बिना ३२ इन्द्रों का उल्लेख हुआ है।[१२] आदिपुराण में ऋषभदेव के जन्म के अवसर पर इन्द्र द्वारा विभिन्न प्रकार के नृत्य एवं नाटक करने का उल्लेख एलोरा की गुफा सं० ३० की इन्द्र की दशमुखी नृत्यरत मूर्ति के सन्दर्भ में विशेष महत्वपूर्ण है। तीर्थंकरों के जन्म-कल्याणक एवं अन्य अवसरों पर इन्द्र की उपस्थिति कुंभारिया एवं दिलवाड़ा के मूर्त उदाहरणों में अनेकशः देखी जा सकती हैं। साथ ही सभी जैन मंदिरों पर ब्राह्मण मंदिरों की भाँति गजवाहन वाले इन्द्र को दिक्पाल रूप में वज्र एवं अंकुश सहित निरूपित किया गया है।

महापुराण में नारद, कामदेव, वामन, लक्ष्मी, सरस्वती, दिक्कुमारियों एवं नागदेवों के भी उल्लेख मिलते हैं। एलोरा की जैन गुफाओं में लक्ष्मी और पार्श्वनाथ की मूर्तियों में नागराज धरणेन्द्र के शिल्पांकन के अतिरिक्त इक्षुधनु और पुष्पशर से युक्त कामदेव की भी एक मूर्ति मिली है।

आदिपुराण में ऋषभनाथ के पुत्रों—भरत एवं बाहुबली के युद्ध और बाहुबली की कठिन तपश्चर्या का भी उल्लेख हुआ है जो एलोरा के जैन गुफाओं की बाहुबली मूर्तियों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। एलोरा में पार्श्वनाथ के बाद सर्वाधिक स्वतन्त्र मूर्तियाँ (ल० २०) बाहुबली की ही बनीं जिनमें आदिपुराण के विवरण के अनुरूप बाहुबली को कायोत्सर्ग में तपश्चर्या में तल्लीन और शरीर से लिपटी लता वल्लरियों एवं समीप ही निश्चिन्त भाव से विचरण करते सर्प एवं मृग आदि वन्य जीव-जन्तुओं की आकृतियों सहित दिखाया गया है जो बाहुबली की गहन साधना का सूचक है। आदिपुराण में समवसरण की परिकल्पना के समान ही गज एवं सिंह तथा मयूर-सर्प जैसे परस्पर शत्रुभाव वाले वन्य जीव-जन्तु को बाहुबली के समीप निश्चिन्त भाव से स्थित बताया गया है। सिंहनी द्वारा महिष के शिशु को अपने शिशु के समान स्तनपान कराने का उल्लेख भी ध्यातव्य है।[१३] आदिपुराण में बाहुबली के पार्श्वों में उनकी बहनों ब्राह्मी एवं सुन्दरी के स्थान पर दो विद्याधरियों का उल्लेख हुआ है जिन्होंने साधनारत बाहुबली के शरीर से लिपटी माधवी

---

११ आदिपुराण, १२.६९-७६, ८५, १३.४७; १४.२०।

१२ आदिपुराण, २३.१६३।

१३ आदिपुराण, ३६.१६४-७६।

को हटाया था।[१४] आदिपुराण के उपर्युक्त वर्णन की पृष्ठभूमि में ही एलोरा की बाहुबली मूर्तियों में दोनों पार्श्वों में दो विद्याधरियों को बाहुबली के शरीर से लिपटी लतावल्लरियों को हटाते हुए दिखाया गया। आदिपुराण की इस परम्परा का पालन देवगढ़, खजुराहो, बिल्हरी तथा कई अन्य दिगम्बर स्थलों की १०वीं से १२वीं शती ई० की बाहुबली मूर्तियों में भी हुआ है।[१५]

आदिपुराण में जैन मंदिर के लिए सिद्धायतन या चैत्यालय शब्द प्रयुक्त हुआ है और एक स्थल पर चैत्य वृक्ष के समीप जैन मन्दिर के स्थित होने का भी सन्दर्भ आया है। ऊँचे मणिमय शिखरों से युक्त जिनेन्द्रदेव (आदिनाथ) के चैत्यालय में अनेक स्तम्भों एवं शिखरों तथा समीपवर्ती सरोवरों का सन्दर्भ ९वीं-१०वीं शती ई० के जैन मन्दिरों की अवधारणा के अनुरूप हैं।[१६] अनेक शिखरों का संकेत संभवतः अंगशिखरों से संबंधित है। आदिपुराण में जैन मंदिरों को नृत्य व संगीत की प्रस्तुति का स्थल भी बताया गया है जो तत्कालीन मंदिरों में रंगमण्डप या सभामण्डप की अवधारणा को व्यक्त करता है।[१७]

महापुराण में जिन-समवसरण का भी विस्तारपूर्वक उल्लेख हुआ है। समवसरण वह देवनिर्मित सभा है जहाँ केवलज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् प्रत्येक जिन अपना प्रथम धर्मोपदेश देते हैं और समस्त देव, मानव एवं पशु यानी चराचर जगत आपसी कटुता भूलकर जिनोपदेश का श्रवण करते हैं।[१८] तीन प्राचीरों तथा प्रत्येक प्राचीर में चार प्रवेश-द्वारों वाले भव्य समवसरण में सबसे ऊपर जिन (पूर्वाभिमुख) विराजमान होते हैं। अनेक गोपुर द्वारों, तोरणों तथा उनपर १०८ मंगलद्रव्यों (कलश, दर्पण आदि) एवं नवनिधियों से युक्त समवसरण अत्यन्त अलंकृत भवन होते थे। वीथिका, महावीथिका, कोट, धूलिशाल, नाट्यशाला, ध्वजभूमि, चैत्यवृक्ष, स्तूप, श्रीमण्डप, गन्धकुटी, अलंकृत गोपुर द्वारों एवं तोरणों से युक्त समवसरण-सभा न केवल धार्मिक महत्त्व का वरन जैन स्थापत्य का भी एक उत्कृष्ट एवं अभिनव उदाहरण है जिसमें

---

१४ आदिपुराण, ३६.१८३।

१५ मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी, 'इमेजेज़ आव बाहुबली इन एलोरा।

१६ आदिपुराण, ६.१८०-८८; ५.१८५; ७.२७१; उत्तरपुराण, ७५,४०३, ४०७-४०८।

१७ आदिपुराण, ४.७७; १६.१९७; २२.९३-१४६।

१८ आदिपुराण, ३३.७३।

बौद्ध स्थापत्य से सम्बन्धित शब्दों की प्रधानता ध्यातव्य है। समवसरणों के मूर्त उदाहरण मुख्यतः श्वेताम्बर स्थलों से ही मिले हैं। ११वीं से १३वीं शती ई० के मध्य के ये उदाहरण कुंभारिया (महावीर एवं शांतिनाथ मन्दिर), विमलवसही, लूणवसही एवं कैबे से मिले हैं। राजप्रासाद एवं सामान्य भवनों के सन्दर्भ में उनके विभिन्न प्रचलित स्वरूपों एवं विभाजन, विशेषतः भवनों के प्रमुख अंगों के रूप में द्वार, स्तम्भ, गवाक्ष, मण्डप, स्नानागार, नृत्यशाला, भण्डारगृह (आदिपुराण ३७,१४९-१५२) के उल्लेख महत्वपूर्ण और उनके उपयोगितावादी दृष्टि को उजागर करते हैं। आदिपुराण तथा अन्य प्रमुख श्वेताम्बर एवं दिगम्बर ग्रन्थों में ऋषभनाथ द्वारा दी गयी विभिन्न शिक्षाओं के सन्दर्भ में शिल्पकला की शिक्षा का उल्लेख जैन धर्म में शिल्प की प्रतिष्ठा का सूचक है।

महापुराण में सांस्कृतिक जीवन के विविध पक्षों, यथा शृङ्गार, नृत्य, गायन-वादन, वस्त्र एवं दैनिक उपयोग की सामग्रियों का विस्तृत उल्लेख भौतिक जीवन के प्रति उनके सार्थक अनुराग और उसके ज्ञान दोनों को प्रकट करता है। उत्तरपुराण में कुलवती नारियों द्वारा अलंकरण धारण करने का उल्लेख है जबकि विधवा स्त्रियाँ इनका परित्याग कर देती थीं। आभूषणों से सज्जित होने के लिए 'अलंकरणगृह' एवं 'श्रीगृह' का उल्लेख आया है। पूर्ववर्ती ग्रन्थ तिलोयपण्णत्ति की भाँति महापुराण में भी भोग-भूमि काल में भूषणांग तथा मालांग जाति के ऐसे वृक्षों का उल्लेख हुआ है जो क्रमशः नूपुर, बाजूबन्ध, रुच्चिक, अंगद, मेखला, हार व मुकुट तथा विविध ऋतुओं के पुष्पों से बनी मालाएँ एवं कर्णफूल आदि प्रदान करते थे।[१९] आदिपुराण की यह अवधारणा स्पष्टतः भारतीय परम्परा की पूर्ववर्ती कल्पवृक्ष की परिकल्पना तथा शुंग-कुषाणकालीन (सांची, मथुरा) ऐसे कल्पवृक्षों के शिल्पांकन से प्रभावित है जिनमें विविध प्रकार के आभूषणों और वस्त्रों को कल्पवृक्ष से लटकते हुए दिखाया गया है।

महापुराण में शिरोभूषण, कर्णाभूषण, कण्ठाभूषण, हार, कराभूषण, कटि-आभूषण, पादाभूषण, प्रसाधन एवं केशसज्जा आदि के विविध प्रकारों का उल्लेख मिलता है जिनमें पूर्ववर्ती परम्परा में वर्णित आभूषणों एवं प्रसाधन सामग्रियों की अनेकशः चर्चा ९वीं-१०वीं शती ई० में पूर्ववर्ती आभूषणों एवं प्रसाधन सामग्रियों की लोकप्रियता का संकेत देता है। इस दृष्टि से आदि-

---

१९ आदिपुराण, ९.४१-४२।

पुराण में वर्णित हार के ११ भेदों का कौटिल्य के अर्थशास्त्र में पूर्व उल्लेख विशेष महत्वपूर्ण है। आदिपुराण में विशेष अवसरों पर विशेष प्रकार की वेश-भूषा का सन्दर्भ न केवल वस्त्र के महत्त्व वरन् इस संबंध में उनकी सुरुचिपूर्ण समझ का भी सूचक है। दिगम्बर परम्परा में तीर्थंकर यद्यपि निर्वस्त्र होते हैं किन्तु विभिन्न देव मानव आकृतियों को वस्त्रों से सज्जित बताया गया है। एलोरा की पार्श्वनाथ एवं बाहुबली मूर्तियों में क्रमशः पद्मावती एवं विद्याधारियों के निरूपण में वस्त्राभूषणों एवं केशसज्जा का वैविध्य ध्यातव्य है। साथ ही अंबिका यक्षी, आलिंगनबद्ध स्त्री-पुरुष युगलों एवं चामरधारी सेवकों के अंकन में भी वस्त्राभूषण विविधतापूर्ण और चिताकर्षक है।

महापुराण में नृत्य से संबंधित उल्लेख विशेषतः महत्वपूर्ण हैं। आदिपुराण में नृत्य के समय विभिन्न वेश धारण करने और कटाक्ष, कपोलों, पैरों, हाथों, मुख, नेत्रों, अंगराज, नाभि, कटिप्रदेश तथा मेखलाओं द्वारा भाव का प्रदर्शन करने का उल्लेख हुआ है। नृत्य में रस, भाव, अनुभाव एवं चेष्टाओं का होना परम आवश्यक बताया गया है। आदिपुराण में नृत्य की विभिन्न मुद्राओं के सन्दर्भ में मन्द-मन्द मुस्कान से देखते हुए भौंहों के संचालन, स्तन कम्पन, मन्थर गति, स्थूल नितम्ब के विभिन्न मुद्राओं में प्रदर्शन, भुजाओं के संचालन, कटि हिलाने, शरीर के नाभि आदि अवयवों के प्रदर्शन, पृथ्वी तल छोड़ कर नृत्य करने, नृत्य की विभिन्न मुद्राओं के शीघ्रता से परिवर्तन, नृत्य द्वारा केश-पाश प्रदर्शन, स्पन्दन, गायन के साथ, कटाक्ष एवं हाव-भाव के साथ, पुष्प एवं स्वर्ण के घटों को सिर पर रखकर, नेत्रों द्वारा, विभिन्न रूप धारण करके एवं एक भुजा पर नर्तकी तथा दूसरे पर नर्तक को नृत्य कराते हुए स्वयं नृत्य करने के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। नृत्य के साथ वीणा, पुष्कर, बाँसुरी, झांझ, नगाड़े, दुन्दुभि, झल्लरी, काहल, ताल, मृदंग, पणव, दर्दुर तथा विपंची आदि वाद्यों का उल्लेख मिलता है। एलोरा की जैन गुफा सं० ३० में शिव की नटेश मूर्तियों के समान कुछ नृत्यरत मूर्तियां भी बनी हैं। एक उदाहरण में दो पुरुष आकृतियों को शिव आकृति के समान एक पैर उठाकर अत्यन्त गतिशील रूप में नृत्यरत दिखाया गया है। ये नृत्य मुख्यतः विभिन्न अप्सराओं (नीलांजना) एवं इन्द्र द्वारा किये गये थे। जैन पुराणों में शिव के स्थान पर इन्द्र द्वारा विभिन्न नृत्यों का किया जाना ध्यातव्य है। कई नृत्य लोक शैली के नृत्य प्रतीत होते हैं।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

इस प्रकार प्रभु की स्तुति कर शक्र जब चुप हो गए तब त्रिलोकी नाथ ने यह देशना दी—

'यह संसार असार है। ऐश्वर्य और वैभव जल-तरंग की भाँति अस्थिर और चंचल है। यहाँ तक की यह शरीर भी विद्युत झलक की भाँति क्षण स्थायी है। इसलिए चतुर व्यक्ति का कर्तव्य है संसार, ऐश्वर्य और देह से अनासक्त होकर मोक्ष मार्ग के सर्वाराधना रूप यति धर्म को अंगीकार करे। यदि वह यति धर्म अंगीकार करने में समर्थ नहीं हो तो यति धर्म स्वीकार करने की इच्छा रख कर सम्यक्त्व सहित बारह प्रकार का श्रावक-धर्म पालन करने के लिये तत्पर हो जाए। प्रमाद परित्याग कर वह दिन-रात मन-वचन-काया से धर्म का पालन करे। ब्राह्म मुहूर्त में उठकर पंच परमेष्ठि मंत्र का जप करे और सोचे मेरा धर्म क्या है? मेरा कुल कैसा है? मेरा व्रत क्या है? तदुपरान्त प्रातः कृत्य शेष कर गृहस्थित जिन बिम्ब की पुष्प-नैवेद्यादि से पूजा और स्तवन पाठ करे और यथा शक्ति प्रत्याख्यान कर मन्दिर जाए। मन्दिर में प्रवेश कर जिन बिम्ब को नियमानुसार तीन प्रदक्षिणा दे और फिर पुष्पादि द्वारा पूजा कर उनकी स्तुति का पाठ करे। तत्पश्चात् गुरु के सन्मुख दोष परिहार और सेवा का संकल्प ले। गुरु को देखने मात्र से उठकर खड़ा हो जाए, उनकी ओर बढ़े फिर हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक उन्हें बैठने के लिए आसन दे। उनके बैठ जाने पर उनकी पर्युपासना करे। उनके जाने की इच्छा प्रकट करने पर उन्हें कुछ दूर तक आदर पूर्वक उनके पीछे-पीछे चलकर पहुँचाने जाए। इसी प्रकार गुरु महाराज की भक्ति की जाती है।

'फिर घर लौटकर विवेक पूर्वक अर्थ चिन्तन इस प्रकार करे जिससे धर्म का विरोध न हो। तदुपरान्त मध्याह्न में फिर पूजा करे और पूजा के पश्चात् शास्त्र वेत्ताओं के सन्मुख बैठकर शास्त्रों के अन्तर्निहित गूढ़ अर्थ समझने का प्रयास करे। सन्ध्या समय जिन बिम्बों की पूजा और प्रतिक्रमण कर स्वाध्याय करे। फिर यथा समय देव गुरु और धर्म को स्मरण कर स्वल्प निद्रा ग्रहण कर ब्रह्मचर्य पूर्वक रहे। यदि नींद टूट जाए तो नारी देह का स्वरूप और महर्षियों द्वारा उनका परित्याग कर दिया गया था—उन कथाओं का चिन्तन करे। नारी देह बाहर से देखने में सुन्दर होने पर भी मल-मूत्र विष्ठा श्लेष्मा

मज्जा अस्थि आदि अपवित्र वस्तुओं से पूर्ण है। अनेकस्नायुओं से सिलाई किए हुए चमड़े की थैली जैसा है। यदि नारी-शरीर का वहिर्भाग भीतर और अन्तर्भाग बाहर आए तब कामी पुरुष के उस शरीर को गिद्ध, शृगाल और कुत्तों के हाथ से बचाना कठिन हो जाता है। यदि कामदेव नारी को शस्त्र रूप में व्यवहार कर उस जगत को जीतना चाहे तब वे मूढ़ बालक की तरह हलके शस्त्र का व्यवहार क्यों करते हैं? जबकि संकल्प से ही कामदेव उत्पन्न होते हैं और विश्व को विमोहित करते हैं तो उस संकल्प को ही हृदय से उखाड़ डालो। जिसमें सब दोष वर्तमान है उनके प्रतिकार का चिन्तन करें। ऐसा करने पर दोष मुक्त मुनि देवों की तरह आनन्द प्राप्त करने में समर्थ होंगे।

'समस्त जीवों के लिए महादुःखदायी इस भव-स्थिति का चिन्तन कर जो स्वभाव से ही सुखदायक है ऐसे मोक्षमार्ग का अवलम्बन लें। जो मार्ग जिनेश्वर देव, निर्ग्रन्थ गुरु और दया धर्म का है ऐसे श्रावक धर्म की प्रशंसा विवेकी मात्र करते हैं। अतः जिनधर्म की प्राप्ति स्वरूप श्रावक धर्म की अनुमोदना कर यह चिन्तन करें—मुझे ऐसा चक्रवर्ती पद नहीं चाहिए जिसके कारण जिन-धर्म की छाया से भी वंचित होना पड़े। इससे तो सम्यकत्व युक्त दारिद्र्य यहाँ तक कि क्रीतदासत्व भी अच्छा है। वह शुभ मुहूर्त कब आएगा जबकि संसार के समस्त सम्बन्धों को छिन्न कर जीर्ण वस्त्र पहन कर देह को संस्कारित न कर एवं मधुकरी वृत्ति ग्रहण कर मैं मुनिधर्म ग्रहण करूँगा? दुराचारियों का संग त्याग कर गुरुदेवों की चरण रज मस्तक पर धारण कर कब मैं ध्यानाविष्ट होकर भव बन्धन नष्ट करने की शक्ति अर्जित करूँगा? कब आधी रात को नगर के बाहर कायोत्सर्गस्थित मेरी देह ऐसी निःस्पद हो जाएगी कि काष्ठ का भ्रम कर वृषभ अपना शरीर खुजलाने के लिए घर्षण करेंगे? कब मैं अरण्य में पद्मासन में स्थित होकर ध्यान में इतना निमग्न हो जाऊँगा कि वन के मृगशावक मेरी गोद में खेलेंगे और यूथपति मृग मेरे मुख को आघ्राण करेंगे (सूघेंगे)? कब मैं शत्रु और मित्र, तृण और नारी, स्वर्ग और पाषाण, मणि और मिट्टी, संसार और मुक्ति में समबुद्धि रखूँगा? इस प्रकार मुक्ति रूप प्रासाद पर चढ़ने को सीढ़ी रूप गुण श्रेणियों के अरोहण के लिए परमानन्द के कन्द रूप मनोरथ सर्वदा करते रहें। प्रमाद रहित होकर इस भाँति दिन-रात चारित्र का पालन कर और उपर्युक्त व्रतों में सुदृढ़ होकर सामान्य गृहस्थ भी शुद्ध हो सकते हैं।'

भगवान को ऐसी देशना सुनकर अनेकों ने श्रमण धर्म ग्रहण किया जिनमें कुम्भादि सत्तरह गणधर भी थे। भगवान की देशना समाप्त होने पर कुम्भ

गणधर ने देशना दी। कुम्भ गणधर की देशना समाप्त होने पर शक्र औ अन्यान्य उन्हें वन्दना कर स्व-स्व स्थान को चले गए।

प्रभु के तीर्थ में त्रिनेत्र चतुर्मुख स्वर्ण वर्ण वृषभ वाहन भृकुटि नामक यक्ष उत्पन्न हुए। उनके दाहिनी ओर के चार हाथों के तीन हाथों में नीं विजोरा, बरछी, और हथोड़ी थी और एक हाथ अभय मुद्रा में था। बायें ओर के चार हाथों में नकुल, कुठार, वज्र और अक्षमाला थी। इसी प्रका शुभ्र वर्ण हंस वाहना गान्धारी यक्षिणी उत्पन्न हुयी। उनके दाहिनी ओर वे एक हाथ में तलवार और दूसरा हाथ वरद मुद्रा में था। और बायीं ओर वे दानों हाथों में नींबू विजोरा था। वे दोनों भगवान नमि के शासन देव-देवी हुए। नौ महीने कम अढ़ाई हजार वर्ष तक भगवान नमि शासन देव-देवी सहित पृथ्वी पर विचरण करते रहे।

उनके संघ में २०००० साधु, ४१००० साध्वियाँ, ४५० चौदह पूर्वधारी १६०० अवधिज्ञानी, १२६० मनःपर्यवज्ञानी, १००० वादी, १७०००० श्रावक और ३४८००० श्राविकाएँ थी।

अपना मोक्षकाल निकट जान कर प्रभु १००० मुनियों सहित सम्मेद-शिखर पर गए और अनशन ग्रहण किया। एक मास अनशन के पश्चात वैशाख शुक्ला दसमी को अश्विनी नक्षत्र का योग आने पर प्रभु और मुनिगण कर्म क्षय कर शाश्वत अक्षय पद मोक्ष प्राप्त किया। भगवान नमि की पूर्ण आयु दस हजार वर्ष की थी। वे २५०० वर्ष युवराज रूप में, ५००० वर्ष राजा रूप में, २५६० वर्ष व्रती रूप में रहे। भगवान मुनि सुव्रत के समय से भगवान नमि के निर्वाण के मध्य छ सौ हजार वर्ष व्यतीत हुए। इन्द्र और देवगण वहाँ आए और नमिनाथ स्वामी एवं मुनियों का अन्तिम संस्कार सम्पन्न कर निर्वाण महोत्सव मनाया।

एकादश सर्ग समाप्त

द्वादश सर्ग

जिस समय जिनेश्वर नमि छद्मस्थ अवस्था में विचरण कर रहे थे, उस समय चक्रवर्ती हरिषेण राज्य कर रहे थे। उनके जीवन का वर्णन कर रहे हैं।

इसी भरत क्षेत्र में भगवान अनन्तनाथ के तीर्थ में नरपुर नामक नगर में मनुष्यों में अभिराम नराभिराम नामक राजा राज्य करते थे। कालान्तर में उन्होंने विरक्त होकर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली और मृत्यु के पश्चात सनत्कुमार देवलोक में महर्द्धिक देवरूप में उत्पन्न हुए। पांचाल देश की अलंकार रूप

काम्पिल्यनामक एक नगरी थी। जिसकी समृद्धि स्वर्ग-सी थी। और जो शत्रुओं द्वारा अपराजेय थी। यहाँ के राजा का नाम था महाहरि। इक्ष्वाकु वंश के अलंकार रूप महाहरि हरि की भाँति शक्तिशाली और पृथ्वी में प्रसिद्ध थे। उनकी राणी का नाम था मेरा। वह कमलवदनी चारित्र रूपी भूषण से विभूषित और स्व-सौन्दर्य से पृथ्वी को गौरवान्वित कर रही थी।

नराभिराम का जीव स्वर्ग से च्युत होकर उनके गर्भ में अवतरित हुआ। चौदह स्वप्नों ने चक्रवर्ती का जन्म सूचित किया। यथा समय उन्होंने एक स्वर्ण वर्ण युक्त पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम रखा गया हरिषेण। वह पन्द्रह धनुष दीर्घ था। उसे युवराज पद पर अभिषिक्त किया गया।

जब वे महापराक्रम के साथ अपने पिता के राज्य का संचालन कर रहे थे उनके आयुधशाला में चक्र रत्न उत्पन्न हुआ। क्रमशः पुरोहित, वर्द्धकी, सेनापति आदि १३ रत्न उत्पन्न हुए। चक्ररत्न का अनुसरण करते हुए वे पूर्व में मगध तीर्थ में जाकर उपस्थित हुए। दिग्विजय के प्रारम्भ में ही उन्होंने मगध तीर्थ को जय कर लिया। उसके बाद वे दीर्घबाहु दक्षिण गए और दक्षिण समुद्र स्थित वरदाम पति को जीत लिया। तदुपरान्त पृथ्वी पर इन्द्र के समान अटूट शक्ति सम्पन्न वे पश्चिम में गए और प्रभासपति पर जय प्राप्त कर ली।

दिग्गज-से महाशक्ति सम्पन्न दसवे चक्रवर्ती तब सिन्धुनद के निकट गए और क्रमशः उसे भी जीत लिया। इसी प्रकार दिग्विजय कुशल वे वैताढ्य पर्वत के निकट गए और यथा नियम वैताढ्य पति को भी जीत लिया। तदुपरान्त उन्होंने कृतमाल देव को जीतकर सिन्धु के पश्चिम में अवस्थित प्रदेश सेनापति द्वारा जय कर लिया।

सेनापति द्वारा तमिस्रा गुहा का द्वार उन्मुक्त कर देने पर वे हस्ती पृष्ठ पर आरोहण कर उसमें प्रवृष्ट हुए। हस्ती के दक्षिण कुम्भ पर रखे हुए मणि-रत्न के आलोक में वे सेतु द्वारा उन्मग्ना और निमग्ना नदी को पार कर तमिस्रा गुहा के आभ्यन्तर भाग को कांकिनी रत्न कृत मण्डल से आलोकित किया।

उत्तर दिशा का द्वार तो उनके आते ही अपने आप खुल गया। उन्होंने उसी द्वार से निकलकर आपात नामक म्लेच्छों को जीत लिया। सिन्धु नदी के पश्चिम दिशा का भूभाग उनके सेनापति ने जीत लिया और हिमवंत के अधिपति को उन्होंने स्वयं जीत लिया। कांकिणी रत्न की सहायता से ऋषभकूट पर अपना नाम खोदकर और गंगा को पीछे रखकर गंगा के पूर्व दिशा में

स्थित प्रदेश को सेनापति द्वारा जीत लिया। वैताढ्य पर्वत की उभय श्रेणियों के विद्याधरों से उपहार प्राप्त कर उन्होंने नाट्यमाल देव पर विजय प्राप्त कर ली। खण्डप्रपाता गुफा के द्वार को सेनापति द्वारा उन्मुक्त कर दिए जाने पर उन्होंने उस गुफा में प्रवेश किया और पहले की तरह ही चक्र का अनुसरण करते हुए उससे बाहर निकले। गंगा के पूर्व भाग को सेनापति द्वारा जीतकर गंगा के किनारे उन्होंने छावनी डाल दी।

गंगा के मुहाने पर स्थित मगध तीर्थ में निवास करने वाली नवनिधि ने उनके पुण्य प्रभाव से उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। इस भाँति छः खण्ड भरत को जीतकर इन्द्रतुल्य चक्रवर्ती की गरिमा और यशः प्राप्त कर वे काम्पिल्य नगर को लौट आए। देव और राजाओं ने उन्हें चक्री रूप में अभिषिक्त किया। नगर में बारह वर्ष तक उत्सव होता रहा। दीर्घबाहु उनका आदेश भरत क्षेत्र के राजाओं द्वारा माना जाने लगा। उन्होंने धर्मानुकूल दीर्घकाल तक सांसारिक सुखों का भोग किया।

एक दिन संसार से विरक्त होकर उन्होंने सहज भाव से राज्य परित्याग कर मोक्षगमन के लिए उत्सुक बने हुए मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली। हरिषेण चक्रवर्ती ने ३२५ वर्ष युवराज रूप में, ३२५ वर्ष राजा रूप में, १५० वर्ष दिग्विजयी रूप में, ८८५० चक्री रूप में, ३५० वर्ष व्रती रूप में व्यतीत किए। दृढ़तापूर्वक व्रतों को पालन कर जब उनकी १० हजार वर्ष की आयु बीत गयी तब घाती कर्मों के क्षय हो जाने से केवल ज्ञान प्राप्त कर अक्षय आनन्द रूप मोक्ष में चले गए।

द्वादस सर्ग समाप्त

त्रयोदश सर्ग

अब सर्वविजयी जय चक्रवर्ती का जीवन वृत्त वर्णन कर रहे हैं जो कि भगवान नमि के तीर्थ में हुए थे।

जम्बूद्वीप के ऐरावत वर्ष में श्रीपुर नामक नगर में वसुन्धर नामक एक राजा राज्य कर रहे थे। उनकी रानी का नाम था पद्मावती। रानी पद्मावती की मृत्यु से दुःखी होकर राजा ने अपने पुत्र को सिंहासन पर बैठाया और मनोहर उद्यान में जाकर वरधर्म मुनि से धर्म श्रवण कर मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली और दीर्घ दिनों तक सुचारु रूप से मुनि धर्म का पालन कर मृत्यु के पश्चात् सप्तम देवलोक में देवरूप में उत्पन्न हुए।

मगध देश का अलंकार रूप और श्री के निवास स्थल-सा अमरावती तुल्य

राजगृह नामक एक नगर था। वहाँ सर्वदा विजयी विजय नामक इक्ष्वाकु वंशीय सच्चरित्र एक राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम था वप्रा। वे जैसी चारित्र सम्पन्ना थी वैसी ही रूप लावण्य सम्पन्ना भी थीं। उन्हें देखकर लगता मानों कोई देवी ही स्वर्ग से मृत्युलोक में उतर आयी है।

कालक्रम से शुक्र नामक देवलोक से वसुन्धर के जीव ने च्युत होकर उनकी कुक्षि में प्रवेश किया। तब उन्होंने चक्रवर्ती के जन्मसूचक चौदह महा स्वप्न देखे। यथा समय उन्होंने बारह धनुष दीर्घ स्वर्णवर्णीय एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम जय रखा गया।

वयः प्राप्त होने पर उनके पिता ने उन्हें सिंहासन पर बैठाया। कालक्रम से उनकी आयुधशाला में चक्रवर्तीत्व सूचक चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। और क्रमशः छः—छत्र, मणि, दण्ड, खड्ग, चर्म और काँकिनी पूरे सात एकेन्द्रिय रत्न उत्पन्न हुए। तदुपरान्त पुरोहित, गृहपति, अश्व, गज सेनापति वर्द्धकी और स्त्री ये सात पंचेन्द्रिय रत्न उत्पन्न हुए।

दिग्विजय के लिए चक्र का अनुसरण करते हुए वे पूर्वी समुद्र तक गए और मगध तीर्थाधिपति को उनकी अधीनता स्वीकार करने को बाध्य किया। वहाँ से वे दक्षिण समुद्र की ओर गए और वरदाम पति को जीत लिया। कारण पृथ्वी पर देव भी चक्रवर्ती तुल्य नहीं होते। फिर वे पश्चिम समुद्र की ओर गए और तीर निक्षेप कर सहज ही प्रभासपति को जीत लिया। तदुपरान्त द्वितीय समुद्र सी विस्तृत सिन्धु नदी को जीतकर इन्द्र की तरह वैताढ्य पर्वत के अधिष्ठायक देवों को पराजित कर दिया। उन्होंने स्वयं कृतमाल देव को जीत लिया और सिन्धु के पश्चिमी भूभाग को उनके सेनापति ने जय कर लिया। वे दीर्घबाहु तमिस्रा गुहा में प्रविष्ट हुए और उससे निकल कर आपात नामक किरात देव को पराजित कर दिया। उनके सेनापति ने सिन्धु नदी के पश्चिम स्थित भूभाग को जीत लिया और हिमवंत पर्वत के अधिपति को उन्होंने स्वयं जीत लिया और ऋषभकूट पर काँकिनी रत्न से स्वनाम को उत्कीर्ण किया। गंगा पूर्व के भूभाग को उनके सेनापति ने जयकर लिया। उन्होंने स्वयं विद्याधर पति और खण्डप्रपाता गुहा के द्वार पर रहने वाले नाट्यमाल देव को जीत लिया। तदुपरान्त वैताढ्य पर्वत का परित्याग कर खण्डप्रपाता गुहा से निकल कर सेनापति द्वारा गंगा के पूर्व भाग को जय करवाया। जब वे गंगा के मुहाने पर स्थित थे तभी नैसर्प आदि गंगा के मुहाने पर रहनेवाली नवनिधि उनके पास आयीं और उनकी वश्यता स्वीकार कर ली। इस प्रकार चक्रवर्ती का समस्त वैभव प्राप्त कर वे स्व-नगर को लौट आए।

वहाँ देव और राजाओं ने उन्हें चक्री पद पर अभिषिक्त किया। दीर्घकाल तक भरत के छः खण्डों पर आधिपत्य कर उन्होंने चक्रवर्ती का वैभव भोगा और तदुपरान्त संसार से विरक्त होकर मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली।

उन्होंने ३०० वर्ष युवराज रूप में ३०० वर्ष राजा रूप में और ४०० वर्ष व्रती रूप में व्यतीत किए।

व्रत पालन और ३००० वर्षों की परमायु पूर्ण कर घाती कर्मों के क्षय हो जाने से केवल ज्ञान प्राप्त कर अक्षय आनन्द रूप मुक्ति पद को प्राप्त हुए।

राम-लक्ष्मण दशानन तीर्थंकर नमि और चक्रवर्ती हरिषेण एवं जय इन छओं का जो चरित्र ऊपर वर्णित हुआ है वह आप सबों के कर्ण को आनन्द प्रदान करें।

त्रयोदश सर्ग समाप्त

सप्तम पर्व समाप्त

अष्टम पर्व

प्रथम सर्ग

जो जन्म से ही ब्रह्मचारी थे और गहन कर्म रूपी लता के उच्छेद के लिए नेमि या चक्र की धार स्वरूप थे ऐसे त्रिलोकपति भगवान अरिष्टनेमि को मैं वन्दना करता हूँ। अर्हत श्री अरिष्टनेमि, वासुदेव कृष्ण, बलराम हलधारी और प्रतिवासुदेव जरासन्ध का जीवन अब वर्णन करता हूँ।

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में पृथ्वी के अलंकार स्वरूप अचलपुर नामक एक नगर था। वहाँ के राजा का नाम था विक्रमधन। उनका नाम सार्थक था कारण युद्ध में उनके सभी शत्रु पराजित हुए थे। कृतान्त की तरह शत्रु उनके मुख की ओर देख भी नहीं सकते थे किन्तु बान्धवों के लिए वे मित्र रूप थे। उनका प्रताप और बल शत्रुओं के लिए हीरक की भाँति तेज धार वाला था। किन्तु मित्रों के लिए कल्पवृक्ष तुल्य था। समुद्र में जिस प्रकार नदियाँ मिल जाती हैं उसी प्रकार श्री और सम्पदा उनमें आकर मिल गयी थीं। और यश! वह तो पार्वतीय झरने की भाँति चतुर्दिक प्रवाहित होता था।

उनकी पत्नी का नाम था धारिणी। वे धरित्री की ही भाँति धीर और चारित्र अलंकार को धारण किए हुए थी। सद्गुण, सुलक्षण और सौन्दर्य सम्पन्ना वे राजा की मूर्तिमती श्री ही लगती थी। हंसगामिनी मधुरभाषिणी,

श्री की निवास रूपा कमल तुल्य वे भ्रमर जैसे फूल पर निवास करता है उसी प्रकार अपने स्वामी के हृदय में निवास करती थी।

एक दिन रात्रि के शेष भाग में उन्होंने स्वप्न में एक आम्रवृक्ष देखा जो कि फल-फूलों से भरा था। भ्रमर गुंजन कर रहे थे, कोकिल कुहु-कुहु कर रही थी। एक रूपवान पुरुष ने उसे हाथ में लेकर कहा, 'आज इसे तुम्हारे आंगन में रोपण कर रहा हूँ। तदुपरान्त नौ बार इसे अन्य आंगन में रोपण करूँगा। ये हर बार उत्कृष्टतर फल प्रदान करेंगे।'

रानी ने स्वप्न-कथा राजा को बतायी। राजा ने नैमित्तिकों को बुलाकर स्वप्न फल जानना चाहा। वे आनन्दित होकर बोले, 'यह तो निश्चित है कि आपके यहाँ भाग्यशाली पुत्र जन्म ग्रहण करेंगे। किन्तु हम इसका अर्थ नहीं समझ पाए कि वह आम्रवृक्ष नौ बार विभिन्न स्थानों पर क्यों रोपण किया जाएगा? एक मात्र सर्वज्ञ ही इसका अर्थ बतला सकेंगे।'

उनकी बात सुनकर आनन्दितमना रानी पृथ्वी जैसे रत्नों को धारण करती है उसी प्रकार गर्भ को धारण किया। फिर यथा समय पूर्व दिशा जिस प्रकार आनन्ददायक सूर्य को जन्म देती है उसी प्रकार सुन्दर आकृति वाले एक पुत्र को जन्म दिया। राजा ने शुभ दिन देखकर पुत्र का जन्म महोत्सव किया और प्रचुर धन दान किया। उसका नाम धन रखा गया।

पिता-माता को आनन्द देता हुआ धन बड़ा होने लगा और धात्रियों की तरह ही राजाओं की गोद में घूमने लगा। क्रमशः सारी विद्याएँ सीखकर वह अनंग के प्रमदोद्यान प यौवन प्राप्त किया।

कुसुमपुर नामक नगर में सिंह-सा पराक्रमी और रण कुशल सिंह नामक एक राजा थे। उनकी रानी का नाम था विमला। वह चन्द्रकला-सी निर्मल स्व-जीवन की भाँति सबकी प्रिय थी। उन्हें देखकर लगता मानो देवी ही स्वर्ग से उतर आयी है। अनेक पुत्रों के पश्चात् उन्होंने एक रूप लावण्य सम्पन्ना कन्या को जन्म दिया। क्रमशः वह बड़ी हुयी और सुन्दरियों में अग्रगण्य होकर रति को भी अतिक्रम कर समस्त कलाओं में प्रवीण हो गयी।

एक दिन जब रात में विकसित होने वाले श्वेत कमल के खिलने का समय आया वह सखियों के साथ उद्यान में गयी और देवी की तरह स्वच्छंदता-पूर्वक वहाँ विचरण करने लगी। उस उद्यान के सप्तच्छद पुष्पों पर भ्रमर गुँजन कर रहे थे। वाण वृक्ष की मुकुल राजि पंचशर के शरों की शोभा धारण कर रखी थी। युगल सारस के क्रेकार से वह उद्यान मुखरित हो गया

था। स्वच्छ जल की वापी में कल हंस क्रीड़ा कर रहे थे। उद्यान संलग्न इक्षु क्षेत्रों में सुन्दरी उद्यान पालिकाएँ मधुर स्वर में गा रही थी।

उस उद्यान में घूमते हुए धनवती ने अशोक वृक्ष के नीचे एक चित्रकार को चित्र लिए बैठे । धनवती की एक सखी ने उसके हाथ से वह चित्र लेकर देखा। देखा—उसमें एक पुरुष का चित्र अंकित था। उस चित्र को देखकर विस्मित बनी उसने चित्रकार से पूछा—'देव दानव या मनुष्यों में ऐसा कौन है जिसकी ऐसी आकृति हो सकती है? या ऐसी आकृति उनमें कभी रही ही नहीं। क्या तुमने कला के प्रदर्शन के लिए अपनी कल्पना से इस चित्र को अंकित किया है? विधाता के लिए ऐसी आकृति की सृष्टि करना सम्भव नहीं है। अनेक आकृतियों की सृष्टि कर अब वह वृद्ध और जीर्ण हो गया है।'

चित्रकार हँसा और बोला, 'यह छवि जैसी मैंने देखी थी वैसी ही अंकित की है। इसमें कल्पना का तो लेशमात्र अंश भी नहीं है। यह चित्र अचलपुर के राजा विक्रमधन के पुत्र धन का है। यही वे सुदर्शन युवक है। उनको देखने के बाद तो जो मेरा यह चित्र देखेगा वह मेरी निन्दा ही करेगा कि मैं वह रूप अंकित नहीं कर सका। तुम लोगों ने उन्हें देखा नहीं इसीलिए कूपमण्डुक की तरह चित्र देखकर मेरी प्रशंसा कर रही हो। उनका रूप देखकर तो देवियाँ भी विभ्रान्त हो जाती हैं। मैंने तो यह चित्र अपनी आँखों को आनन्द देने के लिए यथासाध्य अंकित करने का प्रयास किया है।' धनवती ने वहीं खड़े हुए उस चित्र को देखा और सब कुछ सुना। सुनकर वह काम के वशीभूत हो गयी। कमलिनी बोली, 'नेत्रों को आनन्द देने के लिए तो यह पर्याप्त है। तुमने एक सुन्दर आकृति अंकित की है। तुम निपुण शिल्पी और कलाकार हो।' ऐसा कहकर कमलिनी चलने को उद्यत हुयी। धनवती भी अनिच्छा होते हुए उसके पीछे चलने लगी। किन्तु चलती हुयी वह पीछे घूम-घूम कर देखती रही। कदम-कदम पर वह लड़खड़ाने लगी। इस प्रकार ऊनमनी-सी मर्दित मृणाल के कमल की तरह विवर्णमुख लिए वह घर लौटी।

धन के चित्र को देखने के पश्चात अब धनवती को कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। उसकी अवस्था तो मरुस्थल में आ पड़ी मराली-सी हो गयी। वह दुबली हो गयी। उसकी भूख-प्यास विलुप्त हो गयी। रात को भी वन से पकड़ कर लायी गयी हस्तिनी की तरह उसके नेत्रों में नींद नहीं थी। धन के जिस चित्र को उसने देखा था और उसके रूप का जो वर्णन उसने सुना था वह स्मरण कर वह सिर धुनने लगी। कभी अंगुलियाँ मरोड़ती, कभी भ्रू कुंचित

करती। धन की चिन्ता में डूबी रहने के कारण वह तुरन्त जो कुछ करती वह भी भूल जाती मानों जैसे वह पूर्व जन्म में घटित हुआ हो। अंग मर्दन, स्नान, प्रसाधन, आभूषण सब कुछ छोड़ दिया। भक्त जैसे इष्ट का ध्यान करता है उसी प्रकार वह धन का ध्यान करने लगी।

एक दिन कमलिनी उससे बोली, 'ओ कमलनयनी तन्वंगी! किस व्याधि और दुश्चिन्ता में तुम म्रियमाण हो गयी हो?' मानों कुपित हो गयी ऐसा भाव बनाकर वह बोली, 'अपरिचित व्यक्ति की तरह तुम क्यों मुझ से यह प्रश्न कर रही हो? तुम तो मेरे द्वितीय जीवन की तरह हो, तुम केवल मेरी सखी ही नहीं हो। फिर क्यों ऐसा प्रश्न कर मुझे लज्जित कर रही हो?'

कमलिनी बोली, 'मानिनि, तुम ठीक कह रही हो कारण तुम्हारे हृदय में जो कंटक की तरह चुभा हुआ है वह मैं जानती हूँ। तुम छवि देखकर धन के प्रेम में पड़ गयी हो। मैं तो तुम से मजाक कर रही थी। अतः इसी चिन्ता में मैंने एक नैमितिक से पूछा था कि क्या मेरी सखी मनोवांछित पति प्राप्त करेगी? उसने भी निश्चिन्तता पूर्वक उत्तर दिया—'तुम्हारी सखी का मनोरथ शीघ्र पूर्ण होगा।' इसलिए तुम धैर्य्य रखो। तुम्हारी इच्छा बहुत जल्द पूर्ण होगी।'

उसके उस कथन से आश्वस्त होकर धनवती ने धैर्य धारण किया।

एक दिन दिव्य अलंकार धारण कर वह अपने पिता को प्रणाम करने गयी। उसके प्रणाम कर चले जाने पर राजा सिंह सोचने लगे अब मेरी यह कन्या विवाह योग्य हो गयी है। इस मृत्यु लोक में उसके उपयुक्त पति कौन होगा?

राजा इस प्रकार सोच ही रहे थे कि उनका वह दूत जिसे उन्होंने राजा विक्रमधन के पास भेजा था लौट आया दूत को जो कुछ कहना था वह कह चुकने के बाद भी जब वह वहाँ बैठा रहा तब राजा ने उससे पूछा, 'क्या तुमने वहाँ कुछ आश्चर्यजनक देखा है?'

वह बोला, 'मैंने वहाँ जो कुछ देखा है वह न तो विद्याधर लोक में है न स्वर्ग में, वह है महाराज विक्रमधन का पुत्र धन। मेरे मन में आया हमारी राजकन्या धनवती के अनुरूप वर विधाता ने योग्य के लिए योग्य की सृष्टि की। दोनों का मिलन होना ही उनकी सार्थकता है।'

यह सुनकर राजा बोले, 'तुम मेरे काम का कितना ध्यान रखते हो। मैं धनवती के उपयुक्त वर की भावना में डूबा हुआ था। तुमने मुझे बचा लिया। दूत, तुम बुद्धिमान हो। तुम आज ही अचलपुर लौट जाओ और राजा विक्रम धन से मेरी प्रार्थना निवेदित करो।'

धनवती की छोटी बहन चन्द्रवती पिता को प्रणाम करने आयी थी। वह उस समय वहीं थी। अतः उसने राजा और दूत में होने वाली सभी बातें सुनी थी। दूत के जाने के लिए घर जाने पर चन्द्रवती यह शुभ समाचार देने के लिए धनवती के पास गयी और उसे सारी बात सुनाकर शुभकामना प्रकट की।

कमलिनी उस समय वहीं थी। धनवती ने उससे कहा, इसकी बातों पर मेरा विश्वास नहीं है। सम्भवतः वह अज्ञानवश ऐसा कह रही है। उसको सच्ची बात मालूम नहीं है। लगता है पिताजी ने अन्य किसी काम से दूत को अचलपुर भेजा हो। भ्रमवश वह उसे मेरे लिए भेजा गया है समझ रही है।

कमलिनी बोली, 'आज दूत यहीं रहेगा। उससे ही पता चलेगा। प्रकाश रहते अग्नि की क्या आवश्यकता!' ऐसा कहकर धनवती की इच्छानुसार उसने दूत को वहाँ बुलवाया। दूत के आने पर उसके मुख से सब कुछ सुनकर धनवती खूब प्रसन्न हुयी। धनवती ने भी एक पत्र लिखकर दूत को दिया। बोली, 'यह पत्र तुम धन के हाथ में देना।'

दूत शीघ्र ही पुनः अचलपुर पहुँचा और राजा विक्रमधन के सम्मुख जाकर खड़ा हो गया। उसे देखकर राजा विक्रमधन बोले, 'आशा करता हूँ महाराज सिंह स्वस्थ और कुशल होंगे। तुम्हारे शीघ्र ही वापस लौट आने के कारण मन व्याकुल हो रहा है।'

दूत ने कहा, 'महाराज चिन्ता का कोई कारण नहीं है। महाराज सिंह अपनी पुत्री धनवती का विवाह आपके पुत्र धन के साथ करना चाहते हैं। राजकुमार धन जिस प्रकार अत्यन्त सुन्दर हैं राजकुमारी धनवती भी वैसी ही सुन्दर हैं। स्वर्ण और रत्न की तरह योग्य के साथ योग्य का मिलन हो। जल-सिंचित वृक्ष की तरह आप दोनों का सौहार्द इस मिलन से वर्द्धित हो।'

राजा सहमत हो गए और उसे पुरस्कार देकर बिदा किया। वहाँ से बिदा होकर दूत राजकुमार के पास गया और धनवती का पत्र उसके हाथ में देकर बोला, 'राजकुमारी धनवती ने यह पत्र आपको दिया है।' राजकुमार ने पत्र लिया और खोलकर पढ़ने लगा। वह पत्र मदन के आदेश की भाँति था। उसमें एक श्लोक लिखा था—

शरद ऋतु के कारण विशेष शोभा प्राप्त कमलिनी म्लानमुखी होकर सूर्य का कर पीड़न प्रार्थना कर रही है। (भावार्थ: यौवन के कारण विशेष शोभा प्राप्त तरुणी पति का कर पीड़न प्रार्थना करती है अर्थात् उसका सान्निध्य चाहती है।)

इस द्वयर्थक कविता को पढ़कर धन समझ गया कि वह उसकी अनुरागिनी हो गयी है। तब उन्होंने धनवती को एक पत्र लिखा और कण्ठहार सहित दूत के हाथ में दे दिया।

धन के बिदा देते ही दूत शीघ्र ही लौट गया और राजा बिक्रमधन की सम्मति राजा सिंह को अवगत करवायी। फिर धनवती के पास जाकर वह पत्र और कण्ठहार देकर बोला, 'राजकुमार धन ने यह पत्र स्वयं लिखकर आपको भेजा है। धनवती ने अपने कर कमलों में चन्द्रिका-सा निर्मल वह मुक्ताहार ग्रहण कर पत्र को खोलकर पढ़ा उसमें लिखा था—

पद्मिनी का मनोरंजन करना सूर्य के लिए स्वाभाविक है। उसके लिए प्रार्थना की आवश्यकता ही क्या है?

पत्र पढ़कर धनवती आनन्दित हुयी। उसकी देह रोमांचित हो गयी। धनवती मन ही मन सोचने लगी—इस पत्र को पढ़कर लगता है कि वे मेरे मनोभाव को समझ गए हैं। इसमें उनकी सम्मति भी है। तभी तो उन्होंने अमृत-सा श्वेत यह मुक्ताहार मुझे पहरने के लिए भेजा है—मानों बाहुओं द्वारा वे मुझे आलिंगन दे रहे हैं। ऐसा सोचकर वह उस हार को गले में पहन लिया और दूत को सम्मानित कर बिदा किया।

तदुपरान्त एक शुभ दिन महा धूमधाम से ज्येष्ठ मन्त्रियों के साथ राजा ने अचलपुर के लिए धनवती को बिदा दी। बिदा के समय उसकी विमल हृदयी माँ विमला ने उसे उपदेश दिया—'अपने सास-श्वसुर की आज्ञा का सदैव पालन करना और पति की देव के समान भक्ति करना। सौतों के प्रति सखी भाव रखना और परिचारिकाओं के साथ प्रीतिभाव। पति का प्रेम प्राप्त होने पर गर्वित मत होना, न मिलने पर द्वेष भाव मत रखना।'

यह उपदेश देकर आँखों के आँसू पोंछते हुए उन्होंने उसे बिदा किया। धनवती के एक सुन्दर पालकी में बैठकर छत्र-चामर आदि राज चिह्न और अनुचरों सहित अचलपुर पहुँचने पर उसे देखने के लिए भीड़ लग गयी। उसके अपरूप सौन्दर्य को देखकर विस्मित बने लोग कहने लगे—'लगता है राजकुमार धन की श्री ही रूप धारण कर उन्हें वरण करने आयी है।'

नगर के बाहर एक उद्यान में पालकी उतारी गयी। फिर एक शुभ दिन खूब धूमधाम से उनका विवाह सम्पन्न हो गया। नव यौवना धनवती के साथ धन पर्णलता-वेष्टित गुवाक वृक्ष की भाँति एवं विद्युत-शोभित नव जलधर की भाँति धन शोभित होने लगे। मदन जिस प्रकार रति के साथ क्रीड़ा करता है

उसी प्रकार धन धनवती के साथ क्रीड़ा करते हुए दीर्घ समय को एक मुहूर्त की भाँति व्यतीत कर दिया।

एक दिन कुमार धन अश्व चलाने के लिए उद्यान में गए। हिलते हुए स्वर्ण कुण्डलों में वे रेवन्त से लग रहे थे। वहाँ उन्होंने चार ज्ञानधारी मुनि वसुन्धर को जिनके द्वारा पृथ्वी पवित्र हो रही थीं, देशना देते हुए देखा। धन उनके निकट गए। उन्हें वन्दना कर कर्ण के लिए अमृत तुल्य उनकी देशना सुनी। विक्रमधन धारिणी धनवती आदि सभी ने वहाँ आकर मुनि की देशना सुनी।

देशना शेष होने पर विक्रमधन ने मुनि राज से पूछा—'धन जब गर्भ में था तब उसकी माँ धारिणी ने स्वप्न में एक आम्रवृक्ष देखा। उसी समय कोई उससे बोला—यह आम्रवृक्ष नौ बार नौ स्थानों में रोपा जाएगा। और उत्तरोत्तर उत्कृष्ट फल देगा। आम्रवृक्ष का देखना तो कुमार का जन्म सूचक था यह समझ में आया किन्तु उस आम्रवृक्ष के नौ बार रोपण का अर्थ समझ में नहीं आया। आप अनुग्रह कर वह बतलाइए।'

राजा विक्रमधन के इस प्रकार पूछने पर मुनिराज ने सम्यक् ज्ञान लाभार्थ अपनी मनः शक्ति को केन्द्रित कर दूरस्थित एक केवली से उसका तात्पर्य पूछा। केवली को केवल ज्ञान के कारण भगवान अरिष्ट नेमि के नौ भवों का वृत्तान्त मालूम हुआ। उन्होंने वही मुनिराज को बताया। यह आपका पुत्र धन नौ बार उत्तरोत्तर उत्कृष्ट जन्म ग्रहण करेगा। नवमें जन्म में इसी भरत क्षेत्र में यह तीर्थंकर अरिष्टनेमि के रूप में जन्म ग्रहण करेगा।'

मुनि का यह कथन सुनकर सभी हर्षित हो गए। जैन धर्म पर उनकी श्रद्धा और दृढ़ हो गयी। तदुपरान्त मुनिराज को वन्दना कर राजा विक्रमधन अन्य परिवारादि सहित राज प्रासाद को लौट गए और मुनिराज भी वहाँ से विहार कर अन्यत्र चले गए। राजपुत्र धन धनवती सहित देवों की भाँति पूर्ववत् विषय सुख भोगने लगे।

रूप में मानों श्रीकी सौत हो ऐसी रूपमती धनवती के साथ धन एक बार जल-क्रीड़ा के लिए सरोवर पर गए। वहाँ प्रशान्ति के प्रतिरूप एक मुनिराज को प्यास, क्लान्ति और ताप से अशोक वृक्ष के नीचे मूर्च्छित होते हुए देखकर धनवती ने अपने पति का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट किया। उनके ओष्ठ और तालु सूख गए थे और फटे हुए पैरों से जमीन पर रक्त बह रहा था। दोनों दौड़कर मुनिराज के निकट गए और शीतल उपचार कर उनकी चेतना

लौटायी। संज्ञा लौटने पर धन ने वन्दना कर कहा आज हमारा अहो भाग्य है कि हमने कल्पवृक्ष जैसे आपके दर्शन इस धरती पर ही कर लिया। मरुभूमि में छायादार वृक्ष की भाँति आप जैसे व्यक्ति का दर्शन हम जैसे लोगों के लिए दुर्लभ है। हे महात्मन्, आपकी यह दशा कैसे हुयी? यह कहने में यदि आपको कष्ट न हो, या रहस्य नहीं खुले तो आप हमें बतलाइए।'

प्रत्युत्तर में मुनिराज ने कहा, 'हे राजन्, ऐसे तो यह संसार ही दुःख रूप है किन्तु अभी मुझे जो दुःख मिला वह विहार के कारण मिला अतः इसे अशुभ नहीं कहा जा सकता। मेरा नाम मुनिचन्द्र है। विहार के लिए मैं अनेक मुनियों सहित निकला था। एक दिन महारण्य में मैं साधुओं से बिछुड़ गया। तदुपरान्त दिग्भ्रान्त होकर इधर-उधर घूमता हुआ यहाँ आ पहुँचा। क्षुधा और तृष्णा से कातर होकर मैं मूर्च्छित हो गया। इसके बाद आपने कैसे मेरे प्राण बचाए वह तो आप ही जानते हैं। आपने मेरे लिए जो कुछ भी किया उसके लिए धर्म लाभ। एक मुहूर्त में जिस प्रकार मैंने अपनी संज्ञा खो दी थी उसी प्रकार संसार में सब कुछ क्षण भंगुर है। एतदर्थ आत्महित-कामी मनुष्यों को धर्माराधना करना उचित है।'

ऐसा कहकर मुनिचन्द्र ने तीर्थंकर प्ररूपित सम्यकत्व का मूल रूप और उसके लिए उपयोगी श्रावक धर्म का वर्णन किया। धन और धनवती ने उपदेश सुनकर तुरन्त श्रावक-धर्म ग्रहण कर लिया। तत्पश्चात् वे मुनि को प्रासाद में लाए और आहार-पानी बहराकर अपूर्व पुण्य के भागी बने। उनका धर्मोपदेश सुनने के लिए धन ने उन्हें कुछ दिन वहीं रखा। तदुपरान्त धन से बिदा होकर मुनिराज पुनः अपने समुदाय में जा मिले। धन और धनवती समुचित रूप में श्रावक धर्म का पालन करने लगे। वे दोनों एक दूसरे के प्रति प्रेम भावापन्न तो थे ही, दोनों का धर्म भी एक हो जाने से उनका प्रेम-भाव और बढ़ गया। राजा विक्रमधन ने मृत्यु के पूर्व राजकुमार धन को सिंहासन पर बैठाया। श्रावक धर्मानुयायी राजा धन धर्मानुसार राज्य शासन करने लगे।

एक दिन उद्यान पालक ने राजा धन से कहा—'मुनि बसुन्धर जो कि पहले भी यहाँ आए थे उद्यान में अवस्थित हैं।' धन और धनवती तुरन्त वहाँ गए और उन्हें वन्दना कर संसार सागर का अतिक्रम करवानेवाली उनकी धर्म देशना सुनी। देशना सुनकर विरक्त हो जाने के कारण स्व-पुत्र जयन्त को राज्य देकर धनवती सहित दीक्षित हो गए। धन के दोनों भाई धनदत्त और धनदेव ने भी उन्हीं के साथ मुनि दीक्षा-ग्रहण कर ली।

मुनि धन गुरु के समीप रहते हूए कठोर तपस्या में लीन हो गए एवं गीतार्थ होकर आचार्य पद पर अभिषिक्त हुए। आचार्य रूप में अनेक राजाओं को उपदेश और दीक्षा देकर अन्त [illegible] सहित उन्होंने अनशन ग्रहण कर लिया। एक मास के अनशन के पश्चात् वे दोनों मृत्यु प्राप्त कर सौधर्म देवलोक में महाऋद्धि सम्पन्न सामानिक देव के रूप में उत्पन्न हुए। उनके भाई धनदत्त और धनदेव साथ ही अन्यों ने भी अखण्ड मुनि धर्म का पालन कर सौधर्म देवलोक में देव रूप प्राप्त किया।

इस भरत क्षेत्र के वैताढ्य पर्वत के अलंकार रूप सुरतेज नामक नगर में सुर नामक एक विद्याधर चक्रवर्ती राजा राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम विद्युन्मति था। मेघ के विद्युत की भाँति वह उन्हें प्रिय थी।

सौधर्म देवलोक का आयुष्य पूर्ण कर धन का जीव वहाँ से च्युत होकर रानी विद्युन्मति के गर्भ में उत्पन्न हुआ। पूर्णिमा जिस प्रकार चन्द्र को जन्म देती है उसी प्रकार विद्युन्मति ने समय पूर्ण होने पर एक पुत्र को जन्म दिया। राजा सुर ने एक शुभ दिन खूब धूमधाम से पुत्र जन्मोत्सव मनाया और उसका नाम रखा चित्रगति। युवा होने के साथ-साथ चित्रगति समस्त विद्याएँ अर्जित कर द्वितीय कामदेव सा लगने लगा।

इसी वैताढ्य पर्वत की दक्षिण श्रेणी में शिवमन्दिर नामक नगर में अनंग सिंह नामक राजा राज्य करते थे। उनकी चन्द्रमुखी पत्नी का नाम था शशिप्रभा। शशिप्रभा ने पवित्र देहवाली एक कन्या को जन्म दिया। अनेक भाइयों के पश्चात् होने के कारण वह अपने माता-पिता को बहुत प्रिय थी। एक शुभ दिन पिता ने उसका नाम रखा रत्नावली। भींगी मिट्टी पर जिस प्रकार लता वर्द्धित होती है उसी भाँति वह बढ़ने लगी। वयस्क होते-होते उसने समस्त कलाएँ सीख लीं और देह का अलंकार रूप मंगलकारी यौवन प्राप्त किया।

एक दिन उसके पिता ने एक नैमित्तिक से पूछा, 'इसके योग्य वर कौन होगा?' प्रत्युत्तर में कुछ विचार कर उसने कहा—'राजन, जो आपके खड्ग रत्न को छीन लेगा और शाश्वत अर्हत् चैत्यों की वन्दना करते समय देव जिस पर पुष्प वृष्टि करेंगे वही नर पुंगव आपकी कन्या का पति होगा। यह सुनकर राजा अत्यन्त प्रसन्न होकर बोल उठे, 'मुझसे जो खड्ग छीन लेगा वह तो अवश्य ही अत्यन्त वीर पुरुष होगा।' ऐसा कहकर उन्होंने नैमित्तिक को बिदा किया।

[क्रमशः

संकलन

॥ शल्य चिकित्सा पर्व—पर्युषण ॥

पर्युषण शब्द की व्युत्पत्ति में दो शब्दों की सन्धि है परि + उषण = पर्युषण। इसका शाब्दिक अर्थ निकट रहना है अर्थात् आत्मा (चेतन) के निकट वास करना पर्युषण का मूल अर्थ है। अपने स्वभाव में उपस्थित रहना, अपने आप में निवास करना इस पर्व की आध्यात्मिक सच्चाई है। हमारा अधिकांश समय एवं शक्ति बहिर्मुखता में व्यर्थ खो जाती है। हम प्रमाद में अधिक जीते हैं अतः यह आध्यात्मिक पर्व हमें अन्तर्मुखता अप्रमत्ता की प्रेरणा प्रदान करने हेतु प्रतिवर्ष प्रस्तुत होता है।

पर्युषण पर्व स्थविर कल्पी मुनियों के लिए दस कल्पों में एक कल्प माना गया है। श्रमण भगवान महावीर ने वर्षाकाल के पचास दिन बीतने के पश्चात् पर्युषणा की, वही दिन संवत्सरी महापर्व बन गया। इसका अनुकरण गणधरों, शिष्यों ने किया। यह परम्परा ढाई हजार वर्ष पहले प्रारम्भ हुई जो आज तक अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित है, गतिशील है। श्रावण कृष्ण प्रतिपद से चातुर्मास प्रारम्भ होता है। चातुर्मास के पचास दिन तक पर्युषणा करना अनिवार्य है। चातुर्मास के सत्तर दिन शेष रहे उसके पूर्व यह पर्व मनाया जाता रहा है।

पर्युषण पर्व शल्य-चिकित्सा का प्रायोगिक वैज्ञानिक, आध्यात्मिक पर्व है। आठ दिन तक संयम, तप, जप, स्वाध्याय ध्यान आदि तत्वों द्वारा पर्व की भूमिका पुष्ट की जाती है। इस महापर्व को कुम्भ-स्नान भी कह सकते हैं। क्षमा आदि धर्मों द्वारा ग्रन्थि विमोचन करना इस पर्व का मुख्य उद्देश्य है। वैर-विरोध, मन-मुटाव वैमनस्य की ग्रन्थियों को खोलने का, सम्यक्त्व को सुरक्षित रखने का तथा तनाव मुक्ति का अपूर्व पर्व है।

—मुनि श्री रवीन्द्र कुमार

जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

जैन सिद्धान्त भास्कर ।। दिसम्बर १९९१

इस अंक में है 'पूर्वमध्यकालीन भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में गाँव एवं नगर व्यवस्था' (डॉ० कमल कुमारी), 'जैन संस्कृति का केन्द्र अजमेर' (डॉ० कस्तुरचन्द कासलीवाल), 'संस्कृत साहित्य में जैन द्वि-सन्धान काव्य' (डॉ० श्रेयांस कुमार जैन), 'जैन दर्शन सम्मत द्रव्यस्वरूप विश्लेषण' (डॉ० कमला पन्त), 'आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में पुद्गल द्रव्य विचार' (डॉ० ऋषभचंद जैन फौजदार), 'मांडु और संगीताचार्य मंडन मालवा के' (अभय प्रकाश जैन), 'क्या अशोक ने संवत चलाया ?' (अभय प्रकाश जैन)।

तीर्थंकर ।। अगस्त १९९३

संपादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'हम दोहरी जिन्दगी क्यों जियें ?' (विद्या विनोद काला), 'पर्यावरण और तीर्थंकर चिह्न' (सुरेश जैन), 'सपने : अपने कितने' (मुनि चन्द्रप्रभसागर)।

प्राकृत विद्या ।। अप्रैल-जून १९९३

इस अंक में है 'प्राकृत परम्परा में संगीत एवं शब्द शास्त्र' (आचार्यश्री विद्यानन्द), 'प्राकृत में खान-पान सम्बन्धी कुछ शब्द' (डॉ० देवेन्द्र कुमार शास्त्री), 'अष्ट पाहुड़ में बिम्ब विधान' (डॉ० रतन चंद जैन), 'जन संचार माध्यम एवं प्राकृत' (डॉ० विजय कुलश्रेष्ठ), 'संख्यात्मक 'कूट' पदों के प्रयोग की परम्परा' (डॉ० दामोदर शास्त्री)।

LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

GOLAGHAT ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : Off. 21039
Res. 21174

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Factory and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phone : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :
4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 30-2071

Branch Office :
Peerkhanpur : Bhadhoi
Phone : 5378
5578,5778

WB/NC-330

Vol. XVII No. 5 **TITTHAYARA** **September 1993**

Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77